सवर्ण आरक्षणः भारत के वर्ग संघर्ष के इतिहास में एक नया अध्याय

एच.एल.दुसाध

8-9 जनवरी, 2019 ! ये दो दिन स्वाधीन भारत के इतिहास के बेहद खास दिनों में जगह बना लिए. इन दो दिनों में जो कुछ हुआ, उससे देश ही नहीं दुनिया भी हतप्रभ है. 7 जनवरी को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की अध्यक्षता में मोदी सरकार ने निर्णय लिया कि सरकारी नौकरियों और शिक्षण संस्थानों में आर्थिक आधार पर आरक्षण दिया जायेगा .इस विधेयक को संसद के वर्तमान सत्र ही पारित कराने के लिए उसने विपक्ष के भारी विरोध के बावजूद राज्यसभा की कार्यवाही भी एक दिन के लिए बढ़ा ली और उसने आनन - फानन में शानदार तरीके से इसे संसद के दोनों सदनों में पारित भी करा लिया. इन दो दिनों में देश-दुनिया ने संविधान के साथ बलात्कार तथा गरीबी का अभूतपूर्व पैमाना तय होते देखा. देखा आरक्षण की 49.9 प्रतिशत की सीमा टूटते. और देखा मोदी के बिछाए जाल में विपक्ष,विशेषकर सामाजिक न्यायवादियों को आत्म-समर्पण करते. यही नहीं इन दो दिनों में सोशल मीडिया पर कांशीराम का मशहूर व पुराना नारा , 'जिसकी जितनी संख्या भारी , उसकी उतनी हिस्सेदारी' भी अभूतपूर्व से वायरल होते देखा गया. त्वरित गति से पास हुए इस विधेयक को संविधान विरोधी बताते हुए प्रत्याशा के मुताबिब याचिका भी दायर हो चुकी है. बहरहाल इन दो दिनों में जो कुछ हुआ उससे देश दुनिया को बिलकुल ही हतप्रभ नहीं होना चाहिए,क्योंकि बहुत नया कुछ नहीं हुआ हैं-ठन्डे दिमाग से अगर विवेचना किया जाय तो यही नजर आएगा कि इन 48 घंटों में सिर्फ भारत के वर्ग संघर्ष के इतिहास में एक नया अध्याय मात्र जोड़ा गया है. इसे समझने के लिए महान समाज विज्ञानी कार्ल मार्क्स के नजरिये से मानव जाति के इतिहास का,जिसकी हम अनदेखी करने के अभ्यस्त रहे हैं,सिंहावलोकन करना पड़ेगा.

मार्क्स ने कहा है अब तक का विद्यमान समाजों का लिखित इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है.एक वर्ग वह है जिसके पास उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व है और दूसरा वह है, जो शारीरिक श्रम पर निर्भर है. पहला वर्ग सदैव ही दूसरे का शोषण करता रहा है. मार्क्स के अनुसार समाज के शोषक और शोषित - ये दो वर्ग सदा ही आपस में संघर्षरत रहे और इनमे कभी भी समझौता नहीं हो सकता. मार्क्स के वर्ग-संघर्ष के इतिहास की यह व्याख्या एक मानव जाति के सम्पूर्ण इतिहास की निर्भूल व अकाट्य सचाई है, जिसकी भारत में बुरी तरह अनदेखी होती रही है, जोकि हमारी ऐतिहासिक भूल रही .

ऐसा इसलिए कि विश्व इतिहास में वर्ग-संघर्ष का सर्वाधिक बलिष्ठ चरित्र हिन्दू धर्म का प्राणाधार उस वर्ण-व्यवस्था में क्रियाशील रहा है,जो मूलत: शक्ति के स्रोतों अर्थात उत्पादन के साधनों के बंटवारे की व्यवस्था रही है एवं जिसके द्वारा ही भारत समाज सदियों से परिचालित होता रहा है. जी हाँ, वर्ण-व्यवस्था मूलत: संपदा-संसाधनों, मार्क्स की भाषा में कहा जाय तो उत्पादन के साधनों के बटवारे की व्यवस्था रही. चूँकि वर्ण-व्यवस्था में विविध वर्णों(सामाजिक समूहों) के पेशे/कर्म तय रहे तथा इन पेशे/कर्मों की विचलनशीलता धर्मशास्त्रों द्वारा पूरी तरह निषिद्ध रही, इसलिए वर्ण-व्यवस्था एक आरक्षण व्यवस्था का रूप ले ली,जिसे हिन्दू आरक्षण कहा जा सकता है. वर्ण-व्यवस्था के प्रवर्तकों द्वारा हिन्दू आरक्षण में शक्ति के समस्त स्रोत सुपरिकल्पित रूप से तीन अल्पजन विशेषाधिकारयुक्त तबकों के मध्य आरक्षित कर दिए गए. इस आरक्षण में बहुजनों के हिस्से में संपदा-संसाधन नहीं, मात्र तीन उच्च वर्णों की सेवा आई, वह भी पारिश्रमिक-रहित. वर्ण-व्यवस्था के इस आरक्षणवादी चरित्र के कारण दो वर्गों का निर्माण हुआ: एक विशेषाधिकारयुक्त व सुविधासंपन्न अल्पजन और दूसरा वंचित

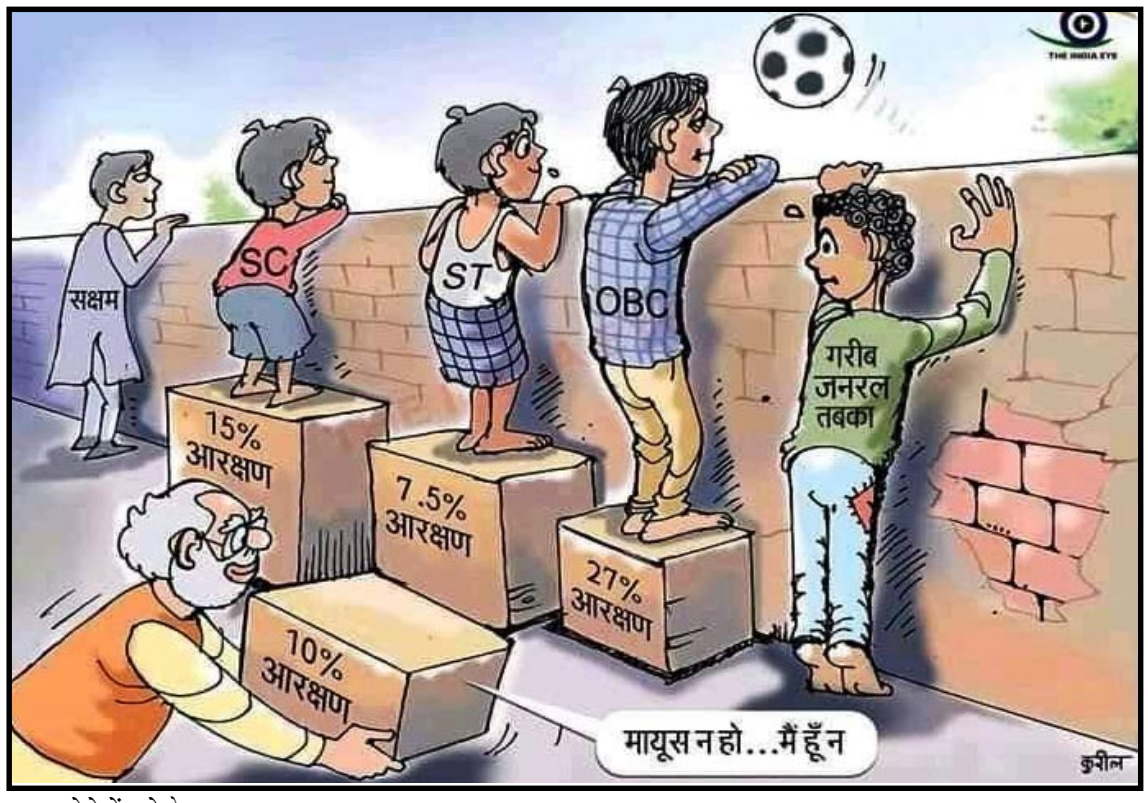

बहुजन.ऐसे में दावे के साथ कहा जा सकता है कि सदियों से भारत में वर्ग संघर्ष आरक्षण में क्रियाशील रहा है.

बहरहाल प्राचीन काल में शुरू हुए 'देवासुर -संग्राम' से लेकर आज तक सवर्णों की समस्त धार्मिक,सांस्कृतिक, साहित्यिक और राजनीतिक गतिविधियाँ जहां हिन्दू आरक्षण से मिले वर्चस्व को अटूट रखने पर केन्द्रित रहीं, वहीं बहुजनों की ओर से जो संग्राम चलाये गए हैं, उसका प्रधान लक्ष्य शक्ति के स्रोतों(आर्थिक, राजनीतिक,शैक्षिक और धार्मिक-सांस्कृतिक) में बहुजनों की वाजिब हिस्सेदारी रही है.वर्ग संघर्ष में प्राय: यही लक्ष्य दुनिया के दूसरे शोषित-वंचित समुदायों का भी रहा है.भारत के मध्य युग में जहां संत रैदास, कबीर, चोखामेला, तुकाराम इत्यादि संतों ने तो आधुनिक भारत में इस संघर्ष को नेतृत्व दिया फुले-शाहू जी-पेरियार-नारायणा गुरु-संत गाडगे और सर्वोपरी उस आंबेडकर ने, जिनके प्रयासों से वर्णवादी-आरक्षण टूटा और संविधान में आधुनिक आरक्षण का प्रावधान संयोजित हुआ. इसके फलस्वरूप सदियों से बंद शक्ति के स्रोत सर्वहाराओं (एससी/एसटी) के लिए खुल गए. हजारों साल से भारत के विशेषाधिकारयुक्त जन्मजात सुविधा भोगी और वंचित बहुजन समाज- दो वर्गों के मध्य आरक्षण पर जो अनवरत संघर्ष जारी रहा,उसमें 7 अगस्त, 1990 को मंडल की रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद एक नया मोड़ आ गया. इसके बाद शुरू हुआ आरक्षण पर संघर्ष का एक नया दौर.

मंडलवादी आरक्षण ने परम्परागत सुविधाभोगी वर्ग को सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत अवसरों से वंचित एवं राजनीतिक रूप से लाचार समूह में तब्दील कर दिया. मंडलवादी आरक्षण से हुई इस क्षति की भरपाई ही दरअसल मंडल उत्तरकाल में सुविधाभोगी वर्ग के संघर्ष का प्रधान लक्ष्य था. कहना न होगा 24 जुलाई ,1991 को गृहित नवउदारवादी अर्थनीति को हथियार बनाकर भारत के शासक वर्ग ने मंडल से हुई क्षति का भरपाई कर लिया. मंडलवादी आरक्षण लागू होते समय कोई कल्पना नहीं कर सकता था, पर यह अप्रिय सचाई है कि आज की तारीख में हिन्दू आरक्षण के सुविधाभोगी वर्ग का धन-दौलत सहित राज-सत्ता, धर्म-सत्ता, ज्ञान-सत्ता पर 90 प्रतिशत से ज्यादा कब्जा हो गया है, जिसमें पीवी नरसिंह राव, अटल बिहारी वाजपेयी और डॉ. मनमोहन सिंह की विराट भूमिका रही.किन्तु इस मामले में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपने पूर्ववर्तियों को मीलों पीछे छोड़ दिया है. इनके ही राजत्व में मंडल से हुई क्षति की कल्पनातीत रूप से हुई भरपाई. सबसे बड़ी बात तो यह हुई है कि जो आरक्षण आरक्षित वर्गों, विशेषकर दलितों के धनार्जन का एकमात्र स्रोत था, वह मोदी राज में लगभग शेष कर दिया गया है, जिससे वे बड़ी तेजी से विशुद्ध गुलाम में तब्दील होने जा रहे हैं. आरक्षण पर संघर्ष के इतिहास में आज के लोकतांत्रिक युग में परम्परागत सुविधाभोगी वर्ग की इससे बड़ी विजय और क्या हो सकती है!

अब जहां तक सवर्ण आरक्षण का सवाल है दोनों ही प्रमुख सवर्णवादी पार्टियां-कांग्रेस और भाजपा- निर्धन सवर्णों को आरक्षण देने के लिए वर्षों से प्रयत्नशील रही हैं, किन्तु इस मामले में भी चैम्पियन बनकर उभरे मोदी ही. जहां तक इस मामले में पहलकदमी का सवाल है, सबसे पहले राजस्थान में कांग्रेस की अशोक गहलोत सरकार ने 1998 में 14 प्रतिशत ईबीसी बिल पास कर संविधान की 9 वीं अनुसूची में डालने के लिए केंद्र की वाजपेयी सरकार की मंजूरी के लिए भेजा गया था. उनके पहले आरक्षण को कागजों की शोभा बनाने के लिए नवउदारवादी अर्थनीति अपनाने वाले नरसिंह राव ने 1991 में गरीब सवर्णों के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की थी,जिसे 1992 में हाईकोर्ट ने खारिज कर दिया था.

जहां तक चैम्पियन सवर्णवादी भाजपा का सवाल है, उनकी ओर से सबसे पहले राजनाथ सिंह ने उत्तर प्रदेश में अपने मुख्यमंत्रीत्व काल में 28 जून,2001 को सामाजिक न्याय समिति का गठन करने के बाद गरीब सवर्णों के लिए 5 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा किया , जिसके समर्थन में कांग्रेस के साथ बसपा और सपा भी होड़ लगायी थी. तब राष्ट्रीय बहस का एक नया मुद्दा खड़ा होते देख उस पर विराम लगाने के लिए प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 29 अगस्त,2001 को संसद में घोषणा किया था, 'चूंकि आरक्षण का आधार निर्धनता नहीं, सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ापन है, अत: निर्धन सवर्णों के लिए उठती मांग पर स्वीकार दर्ज कराने का कोई कारण नहीं है.' लेकिन ऐसा नहीं कि वाजपेयी ने तब सवर्ण आरक्षण की मांग को स्व-विवेक से प्रेरित होकर खारिज किया था, नहीं! ऐसा उन्होंने सहयोगी दलों के दबाव में किया था.अत: इतिहास बताता है कि संघ का राजनीतिक संगठन नयी सदी की शुरुआत से ही गरीब सवर्णों को आरक्षण देने के लिए लालायित रहा है. बाद में राजनाथ सिंह द्वारा शुरू की गयी मुहीम को आगे बढ़ाते हुए सितम्बर 2015 में राजस्थान की भाजपा सरकार ने अनारक्षित वर्ग के आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों के लिए 14 प्रतिशत आरक्षण का वादा किया था, जिसे 2016 में राजस्थान हाईकोर्ट ने रद्द कर दिया. हरियाणा में भी ऐसा ही हुआ था. इस मुहीम को आगे बढ़ाने में मोदी के गुजरात की भाजपा सरकार भी पीछे नहीं रही. उसने 1 मई, 2016 को गुजरात स्थापना दिवस पर आर्थिक आधार पर 10 प्रतिशत आरक्षण देने की घोषणा किया था, जिसमें 6 लाख तक की आय वाले गैर-अरक्षित जातियों को आरक्षण के दायरे में लाया गया था,जिस पर हाई कोर्ट में चुनौती मिलने के कारण अमल न हो सका. मुहीम की इसी कड़ी में अब मोदी सरकार ने मौका माहौल देख कर अपनी कार्यकाल के शेष में कानून मंत्री रविशंकर प्रसाद के शब्दों में स्लॉग ओवर में छक्का जड़ दिया है,जिस पर बुझे मन से विपक्ष, खासकर सामाजिक न्यायवादी दल ताली बजाने के सिवाय कुछ न कर सके. बहरहाल नयी सदी से ही भाजपा में गरीब सवर्णों को आरक्षण देने की जो तीव्र ललक रही, उसे देखते हुए उन राजनीतिक विश्लेषकों पर तरस ही खाया जा सकता है, जो मोदी के छक्के को तीन राज्यों में हुई पराजय और यूपी में माया-अखिलेश के गठबंधन से जोड़कर देख रहे हैं. अटल के मजबूर सरकार के दौर को पार कर मोदी की तानाशाही सत्ता के दौर में पहुंची भाजपा के लिए अपने वर्गीय हित में इस किस्म का काम अंजाम देना ,उसकी प्रतिबद्धता का अंश था,जो उसने कर दिखाया है. बहरहाल भारत के वर्ग संघर्ष के इतिहास में 8-9 तक जो नया अध्याय जुड़ा, उसमें सामाजिक न्यायवादी दल इसलिए हारे हुए नजर आये क्योंकि उनमें अपने वर्गीय हित के प्रति भाजपा जैसी प्रतिबद्धता नहीं रहीं.वे नयी सदी की शुरुआत से ही सवर्णपरस्ती में होड़ लगाते रहे. पर ,राहत की बात यह रही कि बुरी तरह हारने के बावजूद सबने पुरजोर तरीके से जिसकी जितनी संख्याज की मांग उठाया. इससे भी बढ़ी बात यह हुई कि अपने नेताओं की भूमिका से निराश बहुजनों ने सोशल मीडिया पर संख्यानुपात में सर्वव्यापी आरक्षण का सैलाब बहा दिया. यदि हारा हुआ बहुजन नेतृत्व अतीत से सबक लेते हुए सर्वव्यापी आरक्षण पर अपनी राजनीति को केन्द्रित कर सका तो आने वाले दिनों में जन्मजात वंचितों के लिहाज से भारत के बर्ग संघर्ष में सुनहले अध्याय भी जुड़ सकते है.

क्या मोदी सरकार ने सवर्ण मनोविज्ञान को पढ़ने में गलती की है?

अगर अपने समाज की नब्ज पहचानते हैं तो आपको इस बात का यकीन होगा कि आम सवर्ण आरक्षण को बेहद हिकारत के भाव से देखते आये हैं। आज से दो-तीन दशक पहले जातिसूचक गालियां होती थीं, उनकी जगह अब `कोटा वाले' इस्तेमाल करने से काम चल जाता है।

मैं व्यक्तियों की बात नहीं कर रहा हूं लेकिन आम सवर्ण भावना यही है कि आरक्षण ने देश का बेड़ा गर्क रखा है। आरक्षण की वजह से अयोग्य लोग मेरिट वालों का हक मार रहे हैं और इसलिए मेरा भारत महान नहीं बन पा रहा है।

कहने का मतलब यह है कि एसटीएसी और ओबीसी आरक्षण देश की बड़ी सवर्ण आबादी के मन में एक किस्म का पवित्रता बोध भरता है कि देखो हम उनके जैसे नहीं हैं।

फेसबुक और व्हाट्स एप शेयर होनेवाले हज़ारों पोस्टर याद कीजिये जिसमें कहा गया है कि हम गरीब हैं लेकिन आरक्षण की भीख नहीं मांगते हैं। मौजूदा दौर में जहां कम से कम बड़े शहरों में जाति व्यवस्था टूटती दिखाई दे रही है, आरक्षण अगड़ी जातियों के लिए अपनी पवित्रता बचाये रखने का जरिया था।

अब मोदी सरकार ने सवर्णों से उनका यह पवित्रता बोध भी छीन लिया है। इसके बदले में सवर्णों का क्या मिला है? उन्हें वही मिला है, जो उनके पास पहले से था। दस परसेंट गरीब सवर्ण कोटा के जो पैमाने तय किये गये हैं, उसमें अगड़ों की 90 फीसदी आबादी जा जाती है।

यह कोटा मौजूदा 49.5 परसेंट नहीं बल्कि बाकी बचे 50.5 परसेंट में से निकाला गया है। इस 50.5 परसेंट के सबसे बड़े लाभार्थी पहले से ही सवर्ण थे। तो क्या वाकई रातो-रात की गई नई आरक्षण व्यवस्था से सवर्णों को कोई फायदा होगा? आर्थिक आधार एक इतना मुश्किल पैमाना है, जिसका मानकीकरण लगभग असंभव है। देश की बड़ी आबादी आजकल निजी क्षेत्र में काम कर रही है, जहां आमदनी तेजी से बदलती रहती है। ऐसे में भला आर्थिक रूप से कमजोर सवर्ण सरकार भला किस तरह ढूंढेगी?

एसटीएसी एक्ट पर संविधान संशोधन के बाद पैदा हुई नाराजगी मोदी सरकार को डरा रही है। ऐसे में उसने एक ऐसा बैलेसिंग एक्ट ढूंढने की कोशिश की है, जिसका फ्लॉप होना अवश्यंभावी है। सवर्णों के एक तबके में पीड़ित भाव हमेशा से रहा है। उन्हे जब इसका अंदाज़ा होगा कि सरकार उन्हें मूर्ख भी मानती है, तो किस तरह की प्रतिक्रिया होगी?

शिक्षा और रोजगार में आबादी के आधार पर प्रतिनिधित्व का सवाल लंबे समय से सुलग रहा है। सुप्रीम कोर्ट के 49.5 परसेंट कैप का हवाला देकर सरकारें इस मामले को ठंडा करती आई हैं। अब यह सारे सवाल फिर खुलेंगे। लोकसभा चुनाव में जातिगत जनगणना के आंकड़े सार्वजनिक करने की मांग उठेगी। मंडल और कमंडल की लड़ाई फिर से जोर पकड़ेगी। कमंडल को लेकर बीजेपी दुविधा में है। लेकिन आरजेडी जैसी पार्टियों ने बता दिया है कि मंडल को लेकर उनके मन में कोई संशय नहीं है। ऐसे में आनेवाले दिनों के राजनीतिक घटनाक्रम बेहद दिलचस्प होंगे।